पौधों में भोजन
कुछ प्रयोग, कुछ इतिहास

किशार पवार

"... मैंने पुदीने की एक शाखा को पानी पर उलटे किए हुए कांच के जार में रखा। यह जार पानी से भरे हुए बर्तन में रखा गया था। कुछ महीनों तक यह शाखा उस जार में वृद्धि करती रही। मैंने पाया कि इस जार की हवा में न तो मोमबत्ती बुझी, न ही उस चूहे को कोई परेशानी हुई जिसे मैंने इस जार में रखा। . ."

सारी दुनिया अपने भोजन के लिए पेड़-पौधों पर निर्भर है। लेकिन क्या किसी ने उन्हें कुछ खाते-पीते देखा है? कैसे छोटा-सा बीज फूटकर छोटा-सा पौधा बनता है, पत्तियां निकलती हैं और फिर वह एक भरे-पूरे पेड़ में बदल जाता है?

ऐसे ही कई सवाल सदियों से उठते रहे हैं और अरस्तू से लेकर आज तक वैज्ञानिकों को परेशान करते रहे हैं।

अब हम जानते हैं कि पेड़-पौधे अपना भोजन स्वयं बनाते हैं – सूर्य के प्रकाश की उपस्थिति में हरे क्लोरोफिल की सहायता से। आज हम काफी कुछ जानते हैं पत्तियों में पाए जाने वाले विभिन्न रंजकों की रचना व उनकी भूमिका के बारे में; किस तरह ये रंजक सूर्य की ऊर्जा को ग्रहण कर उसे रासायनिक ऊर्जा में बदल देते हैं; किस तरह पत्तियों में पानी और कार्बन डाइऑक्साइड जैसे सरल अकार्बनिक पदार्थों से ग्लूकोज़, स्टार्च

और अन्य जटिल कार्बनिक पदार्थ बनते हैं। संक्षेप में कहें तो प्रकाश संश्लेषण आज हमारे लिए कोई अनोखा शब्द नहीं है। लेकिन जिस जानकारी या ज्ञान को हम कक्षा के एक पाठ में पढ़ लेते हैं उसे खोजने में सदियां लग गईं; लंबे-लंबे प्रयोग हुए, उपकरण बने और फिर प्रयोगों के परिणामों को और परिष्कृत किया गया। कई शंकालु, खोजी और जिज्ञासु प्रवृति के लोगों ने अपने जीवन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा लगा दिया इनमें।

और रोचक बात तो यह है कि – हमेशा के समान – शुरुआत में शायद किसी को भी नहीं मालूम होता कि उन्होंने जो खोजा है वो आगे जाकर किस दूसरी जानकारी से जुड़ेगा और अंत में जो सिद्धांत आएगा वो क्या होगा? जैसे-जैसे इस लेख में आप आगे बढ़ेंगे यह बात और स्पष्ट होती जाएगी। तो आइए, अतीत पर नज़र डाल कर सरल-सी दिखने वाली इस जटिल प्रक्रिया, जिस पर सारी दुनिया का दारोमदार है, को कदम-दर-कदम समझने की कोशिश करें।

आज से लगभग 2000 साल पूर्व ग्रीक दार्शनिक-वैज्ञानिक अरस्तू का ऐसा विचार था कि चूंकि पौधों में जंतुओं के समान कोई पाचक अंग नहीं होते अत: पौधे मिट्टी में घुले सड़े-गले पदार्थ पोषण के रूप में लेते हैं जिनसे उनके शरीर में वृद्धि होती है। उनकी मृत्यु पर ये पदार्थ मिट्टी में मिल जाते हैं और इस तरह ये चक्र चलता रहता है। लगभग डेढ हज़ार साल तक यही मान्यता प्रचलित रही।

फिर सन् 1450 के आसपास यह विचार आया कि पौधों को अपनी ज़रूरत का सामान दरअसल पानी से मिलता है, तभी वे इतने हरे-भरे हो पाते हैं। और इसीलिए साल-दर-साल फसल लेने पर भी मिट्टी की पर्त वैसी ही बनी रहती है, कमतर नहीं हो जाती। लेकिन इन में से किसी भी धारणा का कोई प्रयोगात्मक आधार नहीं था।

पांच साल चला एक प्रयोग

बेल्जियन वैज्ञानिक ज्यां बैपटिस्ट वान हैलमोन्ट का भी विश्वास था कि समस्त वनस्पति जगत प्रमुखत: पानी से ही बना है और उसने अपने प्रयोग में इस विचार को जांचने की ठानी। आज हम इस प्रयोग को साधारण कह सकते हैं लेकिन विज्ञान के इतिहास में लंबी अवधि का शायद यह पहला प्रयोग था जिसमें इतने व्यवस्थित तरीके से निष्कर्ष निकाले गए और उनको रिकॉर्ड किया गया। आइए सन् 1648 में प्रकाशित हुए पर्चे से हेलमोन्ट के शब्दों में ही सुनें कि उसने अपना निष्कर्ष कैसे निकाला।

"मैंने मिट्टी का बना एक बर्तन लिया और इसमें बिल्कुल सुखाई हुई

200 पौंड मिट्टी भरी। फिर इसे पानी से सींचा और इसमें विलो (वीर का पेड़) का एक पौधा लगाया जिसका वज़न 5 पौंड था। पांच साल निकल गए और यह पौधा बढ़कर 169 पौंड 3 औंस का हो गया। इस बीच इस मिट्टी को बरसात के पानी से या फिर ज़रूरी हो तो आसुत जल से सींचा जाता था। यह मिट्टी का बर्तन काफी बड़ा था और ज़मीन में गड़ा कर रखा गया था। बाहर से आने वाली धूल-मिट्टी इसमें न जा पाए इसलिए मैंने इसके मुंह को बारीक छेद वाले लोहे के पतरे से ढंक रखा था। इस बीच जो चार पतझड़ आए उस समय गिरने वाली पत्तियों का वज़न मैंने नहीं लिया। अंत में मैंने फिर से बर्तन की मिट्टी को निकाला, सुखाया और तौला। और यह 200 पौंड से बस दो औंस कम निकली। इसका अर्थ है कि 164 पौंड की लकड़ी, तना और जड़ सिर्फ पानी से बन गए।"

आज हम मान सकते हैं कि यह निष्कर्ष बहुत स्थूल है क्योंकि हेलमोन्ट ने पेड़ के आसपास की हवा के बारे में कोई गौर नहीं किया। परन्तु आज से लगभग साढ़े तीन सौ साल पहले पांच साल चलने वाला प्रयोग सोचना और करना अपने आप में मायने रखता है। और पहली बार किसी जीवित वस्तु के साथ रसायन का एक प्रयोग किया गया यानी कि यह शायद पहला जैव-रासायनिक प्रयोग था।

लगभग सौ साल तक यह स्थिति बरकरार रही। तत्पश्चात 1727 में अंग्रेज़ वनस्पतिशास्त्री स्टीफेन हेल्स की एक पुस्तक आई – 'वेजिटेबल स्टेटिक्स'। इसमें उसने लिखा कि पौधे अपनी वृद्धि के लिए मूलतः पोषक पदार्थ के रूप में हवा का इस्तेमाल करते हैं हेल्स ने पौधों के साथ बहुत से प्रयोग किए। उसने देखा कि लकड़ी को जलाओ तो उसमें

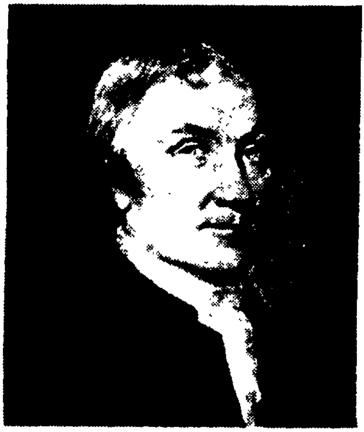

जोसेफ प्रीस्टले: 18वीं सदी का एक प्रमुख ब्रिटिश वैज्ञानिक, जिसने एक महत्वपूर्ण गैस की खोज की थी, जिसे बाद में लिवोज़ियर ने ऑक्सीजन नाम दिया।

से गैस निकलती है, और इसी के आधार पर उसने तर्क दिया कि हो सकता है कि पत्तियां इससे उलटा, हवा में से गैस सोखती हों। इसके बाद एक और प्रयोग हुआ जिसने मामले में कुछ नए पहलू जोड़े।

दूषित हवा और ताज़ी हवा

प्रयोगकर्ता थे एक प्रसिद्ध रसायनज्ञ जोसेफ प्रीस्टले। यह पहले वैज्ञानिक थे जिनका ध्यान इस बात पर गया कि श्वसन और जलाने की क्रिया में हम हवा को दूषित कर देते हैं और पेड़-पौधे इससे उलटा, इस दूषित हवा का उपचार कर उसे फिर से ठीक कर देते हैं। आइए देखते हैं प्रीस्टले के इस प्रसिद्ध प्रयोग को:

". . . कोई यह सोचेगा कि क्योंकि हवा जीवों और पेड़ पौधों दोनों के लिए ज़रूरी है इसलिए दोनों ही हवा के साथ एक समान व्यवहार करेंगे। और मेरी भी धारणा इस प्रयोग के पहले बिल्कुल यही थी।

मैंने पुदीने की एक शाखा को पानी पर उलटे किए हुए कांच के जार में रखा। यह जार पानी से भरे हुए बर्तन में रखा गया था। कुछ महीनों तक यह शाखा उस जार में वृद्धि करती रही। मैंने पाया कि इस जार की हवा में न तो मोमबत्ती बुझी, न ही उस चूहे को कोई परेशानी हुई जिसे मैंने इस जार में रखा।

यह जानने के बाद कि जिस हवा में कई दिनों से पत्ती रखी थी उसमें मोमबत्ती काफी अच्छी तरह जली, यह विचार आया कि यहां पेड़-पौधे से जुड़ा कोई मामला है जो श्वसन के द्वारा दूषित हवा को ठीक कर देता है। इसलिए मैंने सोचा कि इस प्रक्रिया से शायद उस हवा को भी ठीक करना संभव होना चाहिए जो मोमबत्ती के जलने से दूषित हो जाती है।

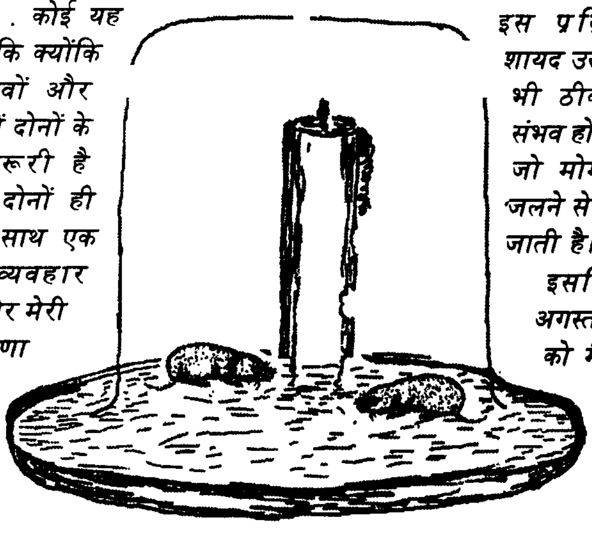

इसलिए 17 अगस्त, 1771 को मैंने पुदीने

प्रकाश संश्लेषण और श्वसन में पौधों की भूमिका

हमारी अधिकतर पाठ्य पुस्तकों में बहुत ज़ोर देकर लिखा होता है कि जिस हवा को हम गंदी कर देते हैं उसे पेड़-पौधे साफ करते हैं और इस तरह वायुमंडल में गंदी और स्वच्छ हवा का संतुलन बना रहता है। यहीं से एक भ्रम उत्पन्न होता है कि जंतुओं और पेड़-पौधों की श्वसन क्रिया अलग-अलग है। यह भ्रम उच्चस्तर की महाविद्यालयीन कक्षाओं तक बना रहता है। विद्यार्थियों को बार-बार समझाने पर भी वे यही कहते हैं कि हमने तो यह किताबों में पढ़ा है। क्या वे गलत हैं? मेरी समझ में यह भ्रम पेड़-पौधों और जंतुओं की क्रियाओं को अलग-अलग करके नहीं समझाने के कारण पैदा होता है। अगर वहीं यह भी स्पष्ट कर दिया जाए कि कार्बन डाइऑक्साइड का उपयोग पौधे अपना भोजन बनाने (प्रकाश संश्लेषण) में करते हैं और बदले में ऑक्सीजन छोड़ते हैं; परंतु दोनो की श्वसन क्रिया एक-सी है जिसमें ऑक्सीजन का उपयोग होता है और कार्बन डाइऑक्साइड छोड़ी जाती है, तो कुछ बात बन सकती है।

की एक शाखा को उस हवा में रखा जिसमें मोमबत्ती जल कर बुझ चुकी थी; और पाया कि उसी महीने 27 तारीख को एक दूसरी मोमबत्ती उसी हवा में काफी अच्छे से जली। बिना कुछ भी बदले इसी प्रयोग को मैंने उन गर्मियों में आठ-दस बार दोहराया। कई बार मैंने उस हवा को – जिसमें मोमबत्ती जलकर बुझ चुकी थी – दो भागों में विभाजित किया। एक हिस्से में पौधे को रखा और दूसरे को वैसा ही रहने दिया, उसी तरह पानी पर उलटाकर रखे हुए कांच के जार में, पर बिना किसी टहनी के। और हमेशा मैंने पाया कि पौधे वाले हिस्से में मोमबत्ती फिर से जली, जबकि दूसरे वाले हिस्से में नहीं। मैंने पाया कि अगर पौधा प्रबल हो तो हवा को फिर से ठीक करने के लिए पांच से छह दिन पर्याप्त होते हैं।. . .''

आज हम इस निष्कर्ष पर गौर करें तो फटाक से पहचान जाएंगे कि प्रिस्टले ऑक्सीजन की बात कर रहा है। लेकिन उस समय ऑक्सीजन की खोज नहीं हुई थी। न ही हम इसके जीवनदायी गुण से परिचित थे। तो प्रीस्टले न तो 'दूषित हवा' को सुधारने वाले तत्व को पहचान पाए, न ही इस पूरी प्रक्रिया में प्रकाश के योगदान पर गौर कर पाए। लेकिन फिर भी उन्होंने लोगों

को इस दिशा में और शोध की ओर प्रेरित कर ही दिया। प्रीस्टले की यह खोज वनस्पतियों और जंतुओं के बीच आपसी सामंजस्य को समझने की एक प्रमुख कड़ी थी।

औरों को प्रीस्टले के इस प्रयोग पर शक था क्योंकि सब लोग इसे दोहरा नहीं पा रहे थे। परन्तु प्रीस्टले के प्रयोग के कुछ साल बाद हुए कुछ और प्रयोगों ने सिद्ध कर दिया कि प्रीस्टले सही है, और इस बात पर भी प्रकाश डाला कि सब से यह प्रयोग क्यों नहीं हो पा रहा।

सूर्य का प्रकाश, पौधे का हरा भाग

प्रीस्टले के बाद प्रकाश संश्लषण को समझने की दिशा में सबसे महत्वपूर्ण प्रयोग डच वैज्ञानिक जान इन्जेनहोज़ का है। इन्जेनहोज़ ने जो प्रयोग किया उसका आधार प्रीस्टले के प्रयोग ही थे। उन्होंने 1779 में अपने प्रयोगों के निष्कर्ष प्रस्तुत किए।

इन्जेनहोज़ ने अपने प्रयोग में यह सिद्ध किया कि 'दूषित हवा' को फिर से शुद्ध करने के लिए सूर्य का प्रकाश ज़रूरी है। प्रकाश की उपस्थिति में ही वह तत्व बनता है जो श्वसन या दहन से 'दूषित हवा' को फिर से ठीक कर देता है। साथ ही उन्होंने यह सिद्ध किया कि यह प्रक्रिया पौधे के हरे भाग की उपस्थिति में ही होती है, और पौधे के अन्य भाग जो हरे नहीं हैं हवा के साथ वैसा ही व्यवहार करते हैं जैसे कि प्राणी।

यह खोज हुई उस वक्त भी हवा की संरचना के बारे में ठीक से जानकारी नहीं थी। परन्तु कुछ ही सालों में आधुनिक रसायन शास्त्र के प्रणेता फ्रेंच वैज्ञानिक लेवोइज़ियर ने ऑक्सीजन की एक पदार्थ के रूप में पहचान बना ली थी, और सन् 1784 तक यह स्पष्ट हो गया था कि प्रकाश की

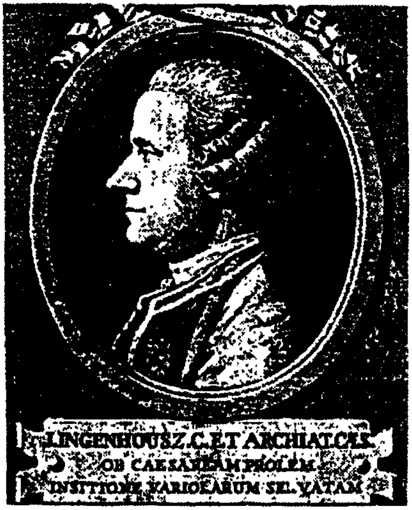

इन्जेनहोज़: जिसने अपने प्रयोग से सिद्ध किया कि 'दूषित हवा' को फिर से शुद्ध करने के लिए सूर्य प्रकाश ज़रूरी है।

स्टोमेटा: उन्नीसवीं सदी के शुरुआती सालों में यह पता चला कि पत्तियों पर मौजूद सूक्ष्म छिद्रों (स्टोमेटा) से पेड़-पौधे गैसों का आदान-प्रदान करते हैं।

उपस्थिति में हरे पौधे ऑक्सीजन बनाते हैं।

लगभग उसी समय सन् 1782 में एक स्विस ज्यों सेनेबियर ने निष्कर्ष निकाला कि 'दूषित हवा के शुद्धिकरण की प्रक्रिया एक अन्य गैस पर निर्भर है।' इस अन्य गैस को सेनेबियर ने 'फिक्स्ड हवा' नाम दिया। सन् 1804 तक यह भी पता चल गया था कि यह कार्बन डाइऑक्साइड गैस है यानी कि कार्बन डाइऑक्साइड को पहचानकर नाम दिया जा चुका था।

तो उन्नीसवीं सदी की शुरुआत तक आते-आते हम पौधों के पोषण यानी प्रकाश संश्लेषण में सक्रिय सब प्रमुख कलाकारों को पहचान चुके थे – पानी, ऑक्सीजन, पौधों का हरा भाग और कार्बन डाइऑक्साइड।

अगला दौर

इसी दौरान सूक्ष्मदर्शी के विकास ने भी पौधों में भोजन निर्माण की प्रक्रिया पर कुछ प्रकाश डाला और हमें यह पता चला कि पत्तियों पर और हरे तनों पर हज़ारों सूक्ष्म छिद्र होते हैं। इन छिद्रों को स्टोमेटा कहा गया। अत: यह विचार भी सामने आया कि पौधों के भोजन निर्माण में इन छिद्रों की भी कुछ भूमिका अवश्य होगी। पौधे केवल जड़ों से ही नहीं पत्तियों से भी कुछ लेन-देन कर सकते हैं। अत: पहली बार पेड़ पौधों के संदर्भ में गैसों की उपयोगिता का तरीका उजागर हुआ।

उन्नीसवीं शताब्दी की शुरुआत में ही, 1804, में एक और स्विस शोधकर्ता निकोलस थियोडोर ने पौधों द्वारा गैसों के आदान-प्रदान की प्रक्रिया पर कुछ प्रयोग किए। थियोडोर ने अपने प्रयोगों में पौधों के द्वारा ली जाने वाली कार्बन डाइऑक्साइड और बनने वाले कार्बनिक पदार्थ तथा निकलने वाली ऑक्सीजन के मात्रात्मक संबंधों का अध्ययन किया। थियोडोर ने बताया कि पौधे जो वज़न हासिल करते हैं वह कार्बन, जो उन्हें कार्बन डाइऑक्साइड के अवशोषण से मिलता है

– और पानी, जो पौधों की जड़ों यानी उसने पक्के तौर पर बताया कि पानी भी पौधों के भोजन निर्माण की प्रक्रिया में एक कच्चे माल के रूप में इस्तेमाल होता है।

प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया के बारे में अब तक की जानकारी को हम इस तरह भी लिख सकते हैं:

कार्बन डाइऑक्साइड + पानी

पौधा सूर्य प्रकाश

कार्बनिक पदार्थ + ऑक्सीजन

हरा पदार्थ क्लोरोफिल

सन् 1847 में दो फ्रेंच रसायनज्ञ पेलेटीय़र और केवेनटो ने पत्तियों का हरा पदार्थ अलग किया और उसे क्लोरोफिल नाम दिया। पौधों द्वारा भोजन निर्माण के इतिहास में एक जर्मन फिज़िशियन मेयर ने सन् 1845 में कहा कि हरे पौधे सूर्य की ऊर्जा को रासायनिक ऊर्जा में बदलते हैं।

इस क्रिया में जितनी कार्बन डाइ-ऑक्साइड खर्च होती है उतनी ही ऑक्सीजन निकलती है यह बात सर्वप्रथम पक्के तौर पर एक फ्रेंच वैज्ञानिक केसिनगॉल्ट ने सन् 1864 में बताई। यानी कि प्रकाश संश्लेषण में कार्बन डाइऑसाइड/ऑक्सीजन का अनुपात एक होता है। इसी वर्ष सेक्स ने बताया कि प्रकाश संश्लेषण क्लोरोप्लास्ट में होती है और इसमें स्टार्च के कण बनते हैं। यह प्रयोग स्टार्च आयोडीन टेस्ट द्वारा किया गया था।

वर्तमान सदी की शुरुआत तक पौधों में भोजन निर्माण की प्रक्रिया का यह स्वरूप हमारे सामने आ चुका था।

कार्बन डाइऑक्साइड + पानी + सूर्य प्रकाश

हरे पौधे | क्लोरोफिल

↓

मंड + रासायनिक ऊर्जा + ऑक्सीजन

हालांकि अब तक यह पता नहीं चला था कि इस क्रिया में निकलने वाली ऑक्सीजन, कार्बन डाइऑक्साइड के टूटने से आती है या पानी से ।

किशोर पंवार: संेधवा में शासकीय महाविद्यालय में वनस्पति शास्त्र पढ़ाते हैं।